(समयसार) गाथा १७-१८

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरिद पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै॥१७॥

जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से॥१८॥

टीका - निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी.... दृष्टान्त दिया। धन का अर्थी हो वह राजा को जाने, जो धन का अर्थी नहीं, उसे राजा का क्या काम? धन का-लक्ष्मी का अर्थी / प्रयोजन जिसे है, जिसको है, वह **धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने....** पहले राजा, उसका चँवर, छत्र आदि चिह्न से यह राजा है — ऐसा जाने। धन का अर्थी — यह दृष्टान्त है और **फिर उसी का श्रद्धान करे....** राजा को जाने फिर श्रद्धा करे — ऐसा। जानने के बाद श्रद्धा करे, जाने बिना श्रद्धा किसकी? और '**यह अवश्य राजा ही है,....** यह अवश्य राजा ही है। **इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी....**' ऐसा निर्णय करे। यह (धन) तो पुण्य से आता है, यह तो दृष्टान्त है न? दृष्टान्त कि राजा है, छत्र-चँवर आदि का चिह्न है, बड़ा छत्र, चँवर आदि चिह्न उसको जानने से जाना और उसकी सेवा करने से धन मिलेगा, और उसी का श्रद्धान करे। अवश्य वह राजा ही है। इसकी सेवा करने से... श्रद्धा में क्या आया? कि इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी। आहाहा!

उसका अनुचरण करने से, आश्रय करने से, आराधना करने से... आहा... आहाहा! धन की प्राप्ति होगी। **उसी का अनुचरण करे,....** और उसकी आज्ञा में रहे। **सेवा करे,.... अनुचरण करे, सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे;....** राजा को। **इसी प्रकार....** यह तो दृष्टान्त हुआ। (**इसी प्रकार**) **मोक्षार्थी पुरुष को....** जिसमें परमानन्दरूपी पर्याय / मोक्ष, साध्य जो मोक्ष परमानन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष का जो अर्थी है... वह धन का अर्थी है, यह मोक्ष का अर्थी है। आहाहा!

पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान की पूर्णता — ऐसा जो मोक्ष, उसका जो अर्थी है, जिसे मोक्ष का प्रयोजन है; दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। आहाहा! जिसे मोक्ष का प्रयोजन है — ऐसे **(मोक्षार्थी) पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,....**

यहाँ से बात उठायी है। पहले नव तत्त्व का ज्ञान करना या अमुक करना या देव-शास्त्र-गुरु की सेवा (करना), यह बात नहीं ली है। यहाँ तो एकदम भगवान आत्मा, जीव राजा अपनी सम्पदा से शोभता है, 'राज्यते शोभते इति राजा' है — ऐसा भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि अपनी लक्ष्मी से शोभायमान है — ऐसा जीव राजा, आहाहा! उसको पहले तो जानना, पहले तो जानना — ऐसा शब्द है। आहाहा! पहले क्या करना? लोग कहते हैं न? पहले क्या करना? सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए पहले क्या करना? कि पहले यह करना। आहाहा!

एकदम भगवान आत्मा (के) मोक्ष का प्रयोजन हो, उसको (क्या करना?) जिसको लक्ष्मी और पुण्य आदि का प्रयोजन है, उसकी तो बात है नहीं। आहाहा! मोक्षार्थी को पहले तो, पहले में पहले आत्मा को जानना चाहिए। आहाहा! पहले शास्त्र पढ़ना या वाँचना, यह बात ली ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त स्वभाव की सम्पदा से परिपूर्ण भरा है। आहाहा! स्वभाव की सम्पदा से प्रभु परिपूर्ण (है तो) उसको पहले जानना। आहाहा! स्वसंवेदन निर्विकल्प ज्ञान से प्रथम जानना। आहाहा! समझ में आया? प्रथम जानने का अर्थ यह। स्वसंवेदनज्ञान अपना-अपने से अनुभव में आनेवाला ज्ञान — ऐसा स्वसंवेदन, अपना वेदन, आनन्द का वेदन, ज्ञान का वेदन — ऐसे स्वसंवेदन ज्ञान से जानना। मोक्षार्थी को स्वसंवेदन ज्ञान से आत्मा को जानना। आहाहा! (जो) परमानन्द की प्राप्ति का, मोक्ष का अर्थी है, जिसे उसका मोक्ष करना है, उसे पहले (आत्मा को जानना)। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा परिपूर्ण आनन्द आदि सम्पदा से भरा जीवराज है। जैसे वह राजा छत्र, चँवर आदि चिह्नों से दिखता है; वैसे भगवान आत्मा अपरिमित ज्ञान और अपरिमित आनन्द, अपरिमित शान्ति आदि स्वभाव से शोभायमान है। ऐसा राजा अर्थात् शोभता है। 'राज्यते शोभते इति राजा' आहाहा! इस राग से शोभता है और निमित्त से शोभता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। उसको (मोक्षार्थी को) आत्मा को **पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,....** पहले आत्मा को जानना चाहिए। आहाहा!

परन्तु एकदम, सीधे.... कोई कारण-फारण है या नहीं? कि गुरु की सेवा करना... अरे...! गुरु तो अपना आत्मा ही गुरु है और निर्मलपर्याय उसकी शिष्य है। आहाहा! बात बहुत कठिन! जगत् को अन्दर भगवान परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसे प्रथम में प्रथम जानना। मोक्षार्थी को पहले में पहला प्रयोजन यह है। आहाहा! शास्त्र जानना और गुरु से पहले सुनना और.... यह बात पहले ली ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

जैसे धन का अर्थी, प्रथम ही राजा को जाने; वैसे मोक्षार्थी, आहाहा! परम अतीन्द्रिय का पूर्ण लाभ, उसका नाम मोक्ष। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, वह आत्मलाभ, वह मोक्ष (है)। आहा! ऐसे आत्मलाभ के (अर्थी) मोक्षार्थी को प्रथम में प्रथम आत्मा को स्वसंवेदन ज्ञान से... आहाहा! निर्विकल्पज्ञान से जानना — ऐसा कहा है। कठिन बात है बापू! आहाहा!

पुरुष को.... पुरुष शब्द से (आशय है) आत्मा। **पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,....** पुरुष शब्द से चेतना-चेतना में जो एकाकार है, वह पुरुष है। 'पुरुषार्थीसिद्ध्युपाय' में है न? पुरुष — चेतना में एकाकार है, वह पुरुष। चेतना में एकाकार है, वह पुरुष। ऐसा पुरुष जो आत्मा... आहाहा! एकदम प्रथम में प्रथम कर्तव्य होवे तो मोक्षार्थी को स्वसंवेदन से आत्मा को जानना। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा को लक्ष्य में लेकर पर्याय में स्व / अपना वेदन प्रत्यक्ष — स्वसंवेदन — स्व / अपना, सम / प्रत्यक्ष — राग की और निमित्त की अपेक्षा बिना और व्यवहाररत्नत्रय की भी अपेक्षा बिना.... यहाँ तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह व्यवहार कहा गया है। समझ में आया? क्या? अपना ज्ञान, अपनी श्रद्धा और अपना चारित्र / अनुचरण, यह भेदरत्नत्रय है। समझ में आया? आहाहा! अत: जिसे अपने आनन्द का पूर्ण लाभ — ऐसे मोक्ष की जिसे चाह है, उसे भगवान आत्मा... आहाहा! पहले में पहले जानना चाहिए — ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ पहले नवतत्त्व का निर्णय करना, या नय, निक्षेप, प्रमाण से... तेरहवीं गाथा में आया है वह कि नय, निक्षेप, प्रमाण से पहले आत्मा दूसरे (दर्शन से भिन्न) भगवान कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरे से भिन्न क्या भगवान कहते हैं! भगवान त्रिलोक के

नाथ जो आत्मा का स्वरूप जिन ने बताया, वह दूसरे अज्ञानी से क्यों भिन्न है — ऐसा नय, निक्षेप, प्रमाण से पहले अनुभव करना, जानना। बाद में यह भी अनुभव करने में अभूतार्थ है। अत: यहाँ तो सीधी बात ली है। आहाहा! निश्चयनय ये द्रव्य है और पर्याय व्यवहारनय है और प्रमाण में दोनों का ज्ञान है और निक्षेप में ज्ञेय भेद के भेदों में, व्यवहारनय से जानना और यह सब बात पहले लेना — यह बात यहाँ नहीं की है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जिसे अन्तर पूर्णानन्द ऐसे आत्मलाभरूपी मोक्ष, पूर्णानन्दरूपी आत्मलाभ का मोक्ष, उसका जिसे प्रयोजन है, उसे... आहाहा! तो उसे तो पहले यह भगवान आत्मा स्वसंवेदनज्ञान से प्रथम जानना। अकेले ज्ञान से, धारणा (करना) — ऐसा नहीं है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा ऐसा है, और वैसा है, और ऐसा ज्ञान में धारण करना (ऐसी) अकेली धारणा वह नहीं — वह चीज नहीं। आहाहा! मूल रकम जो आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु को अपने स्व से-प्रत्यक्ष वेदन से जानना। यह जाना कि यह आत्मा परिपूर्ण शुद्ध आनन्द है, आहाहा! है? **और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए....** यहाँ पहले श्रद्धा नहीं ली, क्योंकि जो चीज उसके ज्ञान में-जानने में नहीं आयी, उसकी श्रद्धा कैसी? आहाहा! ज्ञान की पर्याय में यह वस्तु अखण्ड-ज्ञेय अखण्ड है — ऐसा ज्ञेय का पर्याय में ज्ञान हुए बिना किसकी, श्रद्धा किसकी करना? जो ज्ञान में भावभासन, भासन हुआ नहीं, वस्तु का ज्ञान में वह चीज आयी नहीं और ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ नहीं, तो उसकी श्रद्धा कैसी? किसकी श्रद्धा? आहाहा!

मोक्षमार्ग में **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः** ऐसा वहाँ कहा। ऐसे दर्शन कारण और ज्ञान कार्य (ऐसा आता है)। यहाँ एकदम भगवान आत्मा का ज्ञान करना, आहाहा! और **फिर उसी का श्रद्धान करना,** फिर उसी का श्रद्धान करना। जाने हुए कि श्रद्धा, ज्ञान में भास हुआ — यह चिदानन्द प्रभु शुद्ध पूर्ण है — ऐसा ज्ञान में भास हुआ तो यह उसकी श्रद्धा। यह है — ऐसी श्रद्धा; क्योंकि श्रद्धा का प्रतीति भाव तो अपने को भी नहीं जानता और ज्ञान की पर्याय में पूर्ण वस्तु को, वह नहीं जानता। जाननेवाली पर्याय तो ज्ञान की है और उस ज्ञान की पर्याय में जानने में आया, वहाँ प्रतीति हुई कि यह आत्मा पूर्ण शुद्ध है — ऐसी प्रतीति आयी। आहाहा! कठिन काम भाई!

यह ऐसा पहले शास्त्र-श्रवण करना, गुरु की सेवा करना... पहले आया था। चौथी गाथा में (आया था)। स्वयं अनात्म ज्ञानी है और आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की। वहाँ तो निमित्त से यह बताया है, परन्तु यहाँ तो एकदम भगवान आत्मा निमित्त से शोधता है, सुनता है, और धारण करता है, वह भी आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! शास्त्र से ज्ञान हो, श्रवण से हो, गुरु से हो, भगवान की वाणी से हो परन्तु वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। आहाहा! वह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह इन्द्रियज्ञान, खण्ड-खण्ड ज्ञान है। आहाहा! ऐसा ख्याल छोड़कर इन्द्रिय से ज्ञान हुआ वह इन्द्रियज्ञान। श्रवण से हुआ, देखने से हुआ, पढ़ने से हुआ.... आहाहा! वह सब इन्द्रियज्ञान है क्योंकि भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड है, उसमें द्रव्येन्द्रिय-जड़ निमित्त है और बाहर की चीज भी निमित्त है। आहाहा! बाहर की चीज को भी इन्द्रिय कहा है, जड़ इन्द्रिय को इन्द्रिय कहा, भावेन्द्रिय को इन्द्रिय कहा, तीनों इन्द्रिय का जो ज्ञान है... आहाहा! वह खण्ड-खण्ड ज्ञान है, परावलम्बी है, परसत्तावलम्बी है — ऐसा ज्ञान अनन्त बार किया, वह तो बन्ध का कारण है। अनन्त बार किया और वह कोई छूटने का कारण नहीं हुआ। आहाहा! ग्यारह अंग का ज्ञान, नव पूर्व की लब्धि भी अनन्त बार की। यदि वह ज्ञान मोक्ष का आंशिक भी कारण हो तो अल्प काल में छूटना (मुक्ति) होना चाहिए। यह नव पूर्व की लब्धि और ग्यारह अंग का जानपना... आहाहा! वह खण्ड-खण्ड ज्ञान — इन्द्रियज्ञान है। आहाहा! भगवान अनीन्द्रिय ज्ञान उसमें नहीं आया। आहाहा!

अनीन्द्रिय भगवान आत्मा का प्रथम स्वसंवेदन से ज्ञान करना। आहाहा! गजब बात है भाई! यह तो जिसे संसार के दुःख का नाश करना हो और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति... मोक्ष शब्द है न? मोक्ष अर्थात् छूटना। किससे? दुःख से। किस चीज की प्राप्ति करना? अतीन्द्रिय आनन्द के लाभ की प्राप्ति, मोक्ष है और मोक्ष अर्थात् छूटना। छूटना किससे? इन्द्रिय से। और लाभ किसका? अनन्त आनन्द का। आहाहा!

श्रोता : कितने समय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है। उत्कृष्ट तो एक अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है। विशेष छह माह बतलाया / कहा न? आहाहा! और जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। जिसकी रुचि और आवश्यकता ज्ञात हो, उसका

प्रयत्न हुए बिना नहीं रहता। संसार के काम में प्रयोजन में रुचि है, आवश्यकता है, तो वहाँ पुरुषार्थ काम करता है — पाप के (काम करता है)। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द... यहाँ भेद से कथन है, हाँ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र — यह भेद से कथन है, यह भेद रत्नत्रय! और अखण्ड आनन्द भगवान में यह सदैव और अकेले आत्मा की सेवा करना, वह अभेद... आहा...! उसमें भेदाभेद की बात है। चौदहवीं गाथा में आया है न, प्रयोजन किस बात का है?

अब, इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं.... ऊपर शीर्षक में है न? आहाहा! यह तो धीरज का काम है भाई! गाथा के ऊपर है, अमृतचन्द्राचार्य के ये शब्द नहीं हैं परन्तु पण्डितजी — पण्डित जयचन्दजी हैं, उन्होंने शब्द रखे हैं, क्योंकि गाथा की न — १९ कलश — तो बाद में यह लिया इसलिए कहा। यह तो विशेष स्पष्ट करते हैं। आहाहा!

'धीरज धर न अरे अधीरा वहाँ उतावल का काम नहीं वहाँ'... आहाहा! धीरज धर न अरे अधीरा...। भगवान अन्दर महा आनन्द के ढाले में ढलकर, प्रभु! धीरज से प्रभु 'धी' अर्थात् बुद्धि — ज्ञान की पर्याय और 'र' धीर प्रेरित, वर्तमान ज्ञान की पर्याय स्व तरफ प्रेरे उसका ज्ञान, उसका नाम यहाँ धीर कहा जाता है। आहाहा! जो 'धी' 'र' 'धी' (अर्थात्) ज्ञान की बुद्धि / पर्याय, उसको 'र' — प्रेरति — स्वतरफ, स्वसंवेदन तरफ जाते हैं। आहाहा! उसे धीर कहते हैं, उसे वीर कहते हैं। वीर - विशेषपने वीर्य अर्थात् प्रयत्न। पुरुषार्थ जो 'र' प्रेरति। अन्तर्मुख में पुरुषार्थ प्रेरे, उसे यहाँ वीर कहा जाता है। बाकी सब कायर और आहाहा! नपुंसक (है)। आहाहा! जो पुण्य-पाप में जुड़ जाये और उसकी रचना करे, वह तो नपुंसक है। आहाहा! जिसमें चार गति फले, भटकने के भाव करे और भटकने के कार्य हो... आहा...! वह तो कायर का काम है। भाई! आहाहा!

वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल॥

आहाहा! प्रथम ही, आहाहा! अद्भुत गाथा आयी है भाई! अब कल अपने पर्यूषण हैं — दशलक्षण पर्व (है)। आहाहा! आज मंगलवार है, यह मांगलिक शुरु होता है।

आहाहा! मंग अर्थात् पवित्रता, ल अर्थात् लाति-प्राप्ति। भगवान पूर्णानन्द के नाथ का वेदन करना, उसे प्राप्त करना... आहाहा! पर्याय के वेदन में भगवान को प्राप्त करना... आहाहा! उसका नाम स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा जाना — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **फिर उसी का श्रद्धान करे....** जो जाना उसी का श्रद्धान करना चाहिए — ऐसा शब्द है न? जानने में आया, उसी का श्रद्धान करना चाहिए। आहाहा!

ज्ञायकभगवान पूर्णानन्द प्रभु 'पूर्णं इदम्' जो सम्यक् वेदन से जानने में आया, उसी का श्रद्धान करना चाहिए। जो चीज जानने में आयी, उसका श्रद्धान करना चाहिए। अब ऐसी बातें बापू! जगत् को बहुत कठिन (लगती हैं)। आहाहा! अरे! जन्म-मरण का अन्त लाना... बापू! आहाहा! यह तो धीर-वीर का काम है। आहाहा! **उसी का.... फिर उसी का श्रद्धान....** ऐसा शब्द है न? आहाहा! **जानीते, ततस्तमेव श्रद्धत्ते,** ऐसा शब्द है न? संस्कृत में। **ज्ञातव्यः, ततः स एव श्रद्धातव्यः, प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः, ततः स एव श्रद्धातव्यः, स एव श्रद्धातव्यः,** आहाहा! संस्कृत ली है न? दूसरी लाईन है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपनी मतिज्ञान आदि धारणा में आया, वह नहीं, वह मति अज्ञान है। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में स्वसंवेदन आया, उस ज्ञान में आत्मा पूर्णानन्द प्रभु ज्ञात हुआ — प्रत्यक्ष जानने में आया, फिर उसकी श्रद्धा। है? **फिर उसी का श्रद्धान....** फिर अर्थात् बाद में अर्थात् जानने में श्रद्धान करना — ऐसा। जाने बिना श्रद्धा किसकी? जो चीज ही ज्ञान में नहीं आयी, भावभासन नहीं हुआ... श्रद्धा करो, किसकी श्रद्धा? आहाहा! (स्व) ज्ञेय का पर्यायरूपी भाव में भासन हुआ... आहाहा! लोगों को ऐसा मार्ग कठिन पड़ता है।

अन्य तो कहते हैं कि निश्चय से यह और व्यवहार से यह — समाज की रक्षा करना और वस्त्र छोड़ना और वह व्यवहार करना... अरे प्रभु! क्या करता है भाई? यहाँ तो अभी भेद रत्नत्रयरूप परिणमना भी व्यवहार है। समझ में आया? और एकरूप आत्मा में एकाकार हो जाना, वह अभेद और निश्चय है। समझ में आया?

जो जानने में आया — अपने स्वभाव की जितनी सामर्थ्य है और जितनी शक्तियाँ हैं, सबको पूर्णरूप से पर्याय में जानने में आया, वह जो चीज जानने में आयी, उसका

श्रद्धान करना। आहाहा! समझ में आया? जानने में पर्याय में आया, उसकी श्रद्धा (करना)। पर्याय की श्रद्धा करना — ऐसा नहीं। आहाहा! स्वसंवेदन से जानने में आया तो स्वसंवेदन की श्रद्धा करना — ऐसा नहीं। समझ में आया? स्वसंवेदन में जो ज्ञान वस्तु भगवान पूर्णानन्द आया, उसकी श्रद्धा करना। आहाहा!

ऐसी बात! दिव्यचक्षु है, 'समयसार' 'भाव' दिव्यचक्षु और 'वाणी' दिव्यचक्षु दोनों। आहाहा! अन्दर के नेत्र खुल गये। जो अनादि से राग की एकता में पड़ा था... आहाहा! तो सारे निधान में ताला लगा दिया था। आहाहा! ताला समझते हैं न? ताला... ताला (लगा) दिया था और जब स्वसंवेदन से जानने में आया तो उस राग की एकता का ताला खोल दिया... सारा निधान भगवान... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय प्रभुता — ऐसा पूर्ण स्वरूप जो अखण्ड आनन्द प्रभु (है), उसका जो स्वसंवेदन में ज्ञान हुआ, उसकी ही श्रद्धा करना। आहाहा! स्वसंवेदन की पर्याय की श्रद्धा करना — ऐसा नहीं कहा। वह तो पर्याय है परन्तु उस पर्याय में जो स्वसंवेदन में जो जानने में आया कि यह आत्मा... आहाहा! (उसकी श्रद्धा करना)।

ऐसी बात कहाँ है प्रभु! आहाहा! अरे...! जब तक यह बात सुनने को न मिले, वह कहाँ जीवन बिताये? कहाँ जाये? आहाहा!

फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है,.... देखो! यह पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा, यही आत्मा है। आहाहा! **इसका आचरण करने से...** अब श्रद्धा में क्या आया? पण्डित जयचन्दजी ने विशेष स्पष्टीकरण किया है। पाठ में तो इतना है **'स एवानुचरितव्यश्रय, स एव श्रद्धातव्यः ततः स एवानुचरितव्य'** परन्तु उसका अर्थ यह लिया, उन्होंने निकाला कि भाई! यह आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायक आनन्द का नाथ प्रभु भगवत्स्वरूप, भगवानस्वरूप, परमात्मस्वरूप का स्वसंवेदन में ज्ञान आया, जिसका वह ज्ञान आया, उसकी श्रद्धा करना और उस श्रद्धा में ऐसा आया कि मैं उसका अनुचरण करूँगा — उसमें लीन होऊँगा, इससे कर्म का नाश और अशुद्धता का नाश होगा। आहाहा! किसी व्रत पालने से और भक्ति करने से (नहीं) आहाहा!

ऐसी श्रद्धा में ऐसा आया कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु का वेदन हुआ,

स्वसंवेदन (हुआ), इसकी श्रद्धा की यह आत्मा ही पूर्णानन्द प्रभु है और इस पूर्णानन्द में रमने से, उसमें लीन होगा, इतनी अशुद्धता और राग नाश होगा — ऐसा श्रद्धा में आया। आहाहा! यहाँ तो अभी श्रद्धा नहीं होती, वेदन भी नहीं होता और यह बाहर व्रत, तप, और भक्ति करने से कल्याण हो जाएगा (— ऐसा मानते हैं)। अरे प्रभु! बहुत फरक है भाई! समझ में आया? तुझे कठिन लगता है। आहाहा! व्यवहार क्रिया बराबर करे तो निश्चय प्राप्त कर सकता है, यह बात है ही नहीं, प्रभु! समझ में आया? व्यवहार तो सब राग की क्रिया है न? भगवान तो अन्दर वीतराग मूर्ति प्रभु है न? आहाहा! वह राग से कैसे प्राप्त हो?

अतः श्रद्धा में भी पहले यह आया, क्या आया? आहाहा! **इसका आचरण करने से....** इसका आचरण करने से (अर्थात्) स्वसंवेदन में जो आत्मा ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसकी श्रद्धा की और श्रद्धा में ऐसा आया कि भगवान पूर्णानन्द प्रभु की सेवा करने से — अनुचरण करने से — उसमें रमने से... है? आहाहा! **अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा'....** अवश्य कर्म से छूटना होगा। ऐसा सम्यग्दर्शन में यह आया कि यह वस्तुस्वरूप-भगवान है, तू उसमें लीन होगा, तब राग और कर्म का नाश होगा। आहाहा! कोई व्रत, तप, भक्ति, तप करना, अपवास करना, महीने-महीने के अपवास, और छह महीने के अपवास ये सब अपवास हैं, उपवास नहीं। आहाहा! उप अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव जो वेदन में आया, उसकी श्रद्धा की और उस भगवान आत्मा में मैं लीन होऊँगा, उसमें मैं रमणता करूँगा, इससे ही अशुद्धता और कर्म का नाश होगा, दूसरी कोई विधि नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

श्रद्धा में ऐसा आया, तो जो ज्ञान के वेदन में प्रभु ज्ञात हुआ, उसकी श्रद्धा की और उस श्रद्धा में ऐसा आया कि इस वस्तु में, जो पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें लीन होगा तो कर्म से छूटेगा; दूसरे किसी क्रियाकाण्ड से कर्म छूटेगा — ऐसा है नहीं। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची भाई! यह भाग्यशाली है, यह बात आ गयी और रुचि हो गयी कि यह बात तो ऐसी है भगवान। आहाहा! समझ में आया? हमारे बाबूलालजी

और सब बैठे, दूर बैठे हैं अभी, शान्तिभाई और आये न? यह मार्ग, बापू! क्या कहें? आहाहा! वाणी का विषय नहीं, विकल्प का विषय नहीं। आहाहा! श्रद्धा में क्या आया? कि **इसका आचरण करने से....** इस चिदानन्द भगवान पूर्ण आनन्द के नाथ का आचरण, इसमें रमने से, अन्दर रमने से, वह आचरण... कोई पंच महाव्रत का विकल्प और वह कोई आत्मा का आचरण नहीं है। आहाहा!

भाषा तो सादी है प्रभु! तू, तेरी चीज ही सादी है। आहाहा! वह उपाधिरहित चीज आत्मा है। आहाहा! सादे शृंगार से शोभित भगवान है। आहा...! ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता के स्वभाव से शोभित प्रभु है, यह इसका शृंगार है। आहाहा! (अध्यात्म) पंच संग्रह में लिया है... (अध्यात्म) पंच संग्रह में! दीपचन्दजी हैं न? दीपचन्दजी हैं, (अध्यात्म) पंच संग्रह में (उन्होंने) ऐसा लिया है — शृंगाररस! एक-एक में अद्‌भुत शृंगाररस, वीररस बहुत व्याख्या की है। दीपचन्दजी ने (बहुत व्याख्या की है) ऐसी व्याख्या किसी ने नहीं की। वे भी उस समय ऐसा कहते थे कि अरेरे! मैं बाहर से देखता हूँ समाज को, सम्प्रदाय को, तो कोई आगम अनुसार श्रद्धा दिखती नहीं। २०० वर्ष पहले (की बात है) और मुख से कहता हूँ तो मानते नहीं। अतः मैं लिख जाता हूँ कि मार्ग यह है — ऐसा भावदीपिका में लिखा है। भावदीपिका नामक ग्रन्थ है। आहाहा! अब, यह तो (तत्त्वज्ञान तो) एकदम बाहर में आया है। है? अब लाखों लोग इतना तो सुनते हैं। आहाहा!

इसका आचरण करने से.... इसका अर्थात् भगवान पूर्ण शुद्ध द्रव्य जो पर्याय में ज्ञात हुआ, उसकी श्रद्धा हुई और उसमें आचरण करने से... आहाहा! पर्याय में रमना परन्तु द्रव्य में रमना — ऐसा। अकेले पर्याय में रमना ऐसा नहीं, द्रव्य में रमना, आहाहा! यह है तो पर्याय में रमना, परन्तु त्रिकाली भगवान अनीन्द्रिय पूर्णानन्द और वीतरागता के स्वभाव से भरपूर प्रभु है, उसमें मैं आचरण करूँगा। आत्म आचरण करूँगा, आहाहा! ऐसा आत्मा का आचरण करूँगा, तब **अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा....'** अवश्य कर्म से छूटूँगा। मुझे मोक्ष होने में बिल्कुल आवश्यक बात यह है। आहाहा! चाहे जितने निकाचित् और निधत कर्म हों... आहाहा! परन्तु मेरा आत्मभगवान चीज है, उसमें मैं रमने से — उसका आचरण — आत्म-आचरण (करने से कर्मों से छूटा जा सकेगा।) दया, दान, व्रत आदि तो राग का अनात्म—आचरण है। आहाहा! कठिन बात भाई!

ऐसा तो सिद्धान्त बोलता है, आगम है, युक्ति है, अनुभव और आगम सब एक ही चीज है। लोग कहते हैं ए... सोनगढ़ का एकान्त है... एकान्त है, महावीर से भी विरुद्ध है — ऐसा कहते हैं। अरे भगवान! भाई! तुझे पता नहीं है, प्रभु! आहाहा! वस्तु तो द्रव्य से साधर्मी जीव है वे, पर्याय में भूल हो तो भी वे भगवान हैं। आहाहा! भगवान! तुझे पता नहीं प्रभु और तुम ऐसा आरोप करते हो, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा... सन्त कहते हैं, वही परमात्मा कहते हैं, वे सन्त आडतिया होकर बात करते हैं। अपने अनुभव में रहकर बात करते हैं। आहाहा! यह कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही नाथ! इस अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ भगवान में आचरण करने से (कर्मों से छूटा जा सकेगा)। यह सदाचरण कहते हैं न? लौकिक सदाचरण, वह सदाचरण नहीं। सत् आचरण, सत् स्वरूप भगवान पूर्णानन्द सत् में आचरण करना, वह सदाचरण है। आहाहा!

यहाँ तो यह दया, दान और व्रत करे, वहाँ हो गया... आचरण करते हैं, वह सदाचरण नहीं, वह तो असत् आचरण है वह तो... ऐसी बात है भाई! अरेरे...! भगवान! तू परिपूर्ण प्रभु है न, नाथ! आहाहा! तुझमें कहाँ हीनता, कचास या अपूर्णता है। आहाहा! भगवान तो अनन्त... अनन्त... गुण से परिपूर्ण प्रभु परिपूर्ण भरा है। आहाहा! उसके वेदन में जाना और उसकी श्रद्धा की कि यह आत्मा है और इस आत्मा में आचरण करूँगा तो अवश्य कर्मों से छूटूँगा — ऐसा सम्यग्दर्शन और प्रतीति में आया। आहाहा!

मैं भविष्य में व्रत लूँगा, तप करूँगा और ऐसे बाह्य का कर्म छूटेगा — ऐसा श्रद्धा में था, वह छूट गया। आहाहा! समझ में आया? **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा....** निःसन्देह भगवान आत्मा के आनन्द में रमने से अवश्य कर्मों से छूटूँगा। आहाहा! ऐसी निःसन्देह श्रद्धा हुई। समझ में आया? जिसका — भगवान का पता मिला, उसमें रमने से कर्मों से छूटेगा, अवश्य छूटेगा। आहाहा! व्यवहारधर्म भी उसे कहते हैं कि ऐसे निश्चय के श्रद्धा-ज्ञान आचरण हुआ, उसमें विकल्प उठता है, उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। आहाहा! परन्तु यह व्यवहार बन्ध का कारण है। आहाहा! इन्द्रियाधीन, इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, वह बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत का विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! और नवतत्त्व की भेदश्रद्धा, वह मिथ्यात्व बन्ध का कारण है। आहाहा! भेद, हाँ! नौ के भेद। एकरूप होवे तो अन्तर में आ जाता है। आहाहा!

(समयसार) कलश टीका में लिया है — अनादि नवतत्त्व की श्रद्धा तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वह संवर, निर्जरा, मोक्ष सच्चे नहीं। नवतत्त्व में द्रव्य संवर, द्रव्य निर्जरा... आहाहा! क्या श्लोक आया? आहाहा! थोड़ा व्यवहार का आचरण करूँगा तो में छूटूँगा, यह दृष्टि छूट गयी। समझ में आया? थोड़े व्यवहार की दया, धर्म, शरीर का ब्रह्मचर्य सेवन — ऐसे आचरण करूँगा तो छूटूँगा — यह दृष्टि छूट गयी। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि था। ऐसी बातें बहुत कठिन हैं, भाई! यह तो पण्डितों को भी पचाना कठिन पड़ता है। आहाहा! है?

वस्तु ही सत् सरल प्रभु है न! है न भगवान! है उसे प्राप्त करना है! यह तो न हो और प्राप्त करना हो, वह तो बात दूसरी है। है? आहाहा! सत् प्रभु, सच्चिदानन्दनाथ, है, उसका ज्ञान करना और है, उसकी श्रद्धा करना, है उसमें रमना — यह भेद से तीन कथन / बोल आते हैं, और इतने भेद आये न? सोलहवीं गाथा में आया न? **दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं। ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।** आहाहा! यह तो व्यवहार से तीन बातें की हैं। परन्तु व्यवहार यह, हाँ! एकरूप भगवान की श्रद्धा, एकरूप का ज्ञान और एकरूप की स्थिरता — यह तीन भेद आये वह व्यवहार हुआ। वह व्यवहार हुआ, मलिन हुआ, मेचक हुआ, अनेकता हुई। आहाहा! यह अशुद्धता कही जाती है। आहाहा!

सैंतालीस नय में पर्याय का यह नय कहा न — अशुद्धनय और शुद्धनय। ४६-४७! एक मिट्टी के अनेक पिण्ड — बर्तन आदि अनेकपना है, झारी आदि (अनेकपना है) — ऐसा देखना वह अशुद्धता है और मिट्टी को एकरूप देखना वह शुद्धता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा उसकी पर्याय-निर्मल पर्याय भेद से देखना, वह अशुद्धनय है। आहाहा! नय के सब व्याख्यान आ गये हैं। और भगवान एक ही स्वरूप अखण्डानन्द प्रभु में अन्दर में रमना-एकाकार करना, वह शुद्ध है, वह शुद्धनय है। आहाहा! अरेरे...! कहाँ इसे (पड़ी है)।

फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए.... 'फिर' पहले तो श्रद्धा में लिया, (कि) इस द्रव्यस्वभाव में लीन होगा, इतना कर्म छूटेगा, फिर उसी का अनुचरण करना,

अन्दर रमना। आहाहा! उसी का अनुचरण, उसका अनुचरण करके, चरण — रमना। भगवान पूर्णानन्द का केडे-केडे (पास-पास) रमना, उसे अनुसरण करके रमना। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। आहाहा! नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वह कोई चारित्र नहीं है; वह तो अचारित्र है। आहाहा! नग्नपना वह अजीव (की) दशा है; पंच महाव्रत का परिणाम तो राग है, आहाहा! वह तो राग का आचरण है; वह जीव का आचरण नहीं। सन्तों ने ऐसी स्पष्ट बात कही है और लोगों ने विरोध किया है। अरे... प्रभु! यह विरोध तो तेरे आत्मा के साथ है। है?

श्रोता : अज्ञानी को भ्रम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका विरोध, उसके आत्मा के साथ है।

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान निर्विकल्प अभेद वस्तु... आहाहा! ऐसा दृष्टि में लिया नहीं, ज्ञान में वेदन किया नहीं और बाहर का क्रियाकाण्ड और ऐसा और वैसा... आहाहा! लोकरंजन... मोक्षपाहुड़ में आता है, अष्टपाहुड़ में! लोकरंजन — लोकरंजन (ऐसा) अष्टपाहुड़ में आता है। लोग प्रसन्न हों, प्रसन्न (प्रसन्न) आहाहा! व्यवहार से आता है, ऐसी क्रिया से ऐसा होता है (यह) लोकरंजन अज्ञान है। आहाहा! इसमें तेरा आत्मा प्रसन्न नहीं। आहाहा!

अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;.... भगवान पूर्णानन्द के नाथ प्रभु का ज्ञान किया-श्रद्धान किया। अब उसमें लीन होना चाहिए। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में रमना-अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द! आहाहा! आता है न, नहीं? उसमें — कलश में नित्यभोजी आता है, बन्ध अधिकार में (आता है)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नित्यभोजी भगवान!

दूसरे कहते हैं.... खाना और यह खाने की क्रिया भी, बापू! यह तो जड़ की है भाई! तुझे इसके प्रति लक्ष्य है, वह भी विकारभाव है। आहाहा! यह तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का ज्ञान-श्रद्धान किया और फिर रमना, उस अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, आहाहा! अतीन्द्रिय का स्वाद लेना। ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती हैं, अभ्यास नहीं होता और पूरे दिन संसार के पाप के पोटले में पड़े हैं। अरर...! रंगूलालजी! अरे भगवान! भाई! आहाहा!

अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;.... आहाहा! किसमें? **उसमें....** यह जो ज्ञायकस्वभाव जो जानने में और श्रद्धा में आया है, उसमें लीन होना। समझ में आया? **क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्था....** — मोक्ष? **साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप....** यह अवस्था / पर्याय है, मोक्ष भी (पर्याय है)। **साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप उसकी सिद्धि की....** आहाहा! निष्कर्मदशा पूर्णानन्द की मोक्षदशा अभेद शुद्धस्वरूप **उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है,....** इस प्रकार से उसकी प्राप्ति है; दूसरे किसी प्रकार से प्राप्ति नहीं।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)